REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2018

स्त्री—विमर्श का वर्तमान परिदृश्य

डॉ. प्रमोद पडवळ

सारांश

मनुष्य समूचे संसार में अद्‌वितीय प्राणी है। उसके कई कारण है। भाषा और साहित्य भी उन्हीं में से हैं। मानव की विकास यात्रा में भाषा का सर्जन सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। भाषा के कारण मनुष्य की संप्रेषण की समस्या हल हुई, तो अपने ज्ञान को संजोए रखने की आवश्यकता ने साहित्य का निर्माण हुआ। अगर साहित्य का निर्माण नहीं हुआ होता तो मनुष्य इतना सुसंस्कृत भी नहीं हुआ होता। समयानुरूप परिस्थितियों के साथ—साथ साहित्य की प्रवृत्तियाँ भी बदलती रही है। आज स्त्री, पुरूष, जाति, धर्म आदि के आधार पर साहित्य का विभाजन हो गया है। पहले साहित्य का क्षेत्र केवल पुरूषों की जागीर थी। शिक्षा के प्रचार—प्रसार के परिणामस्वरूप नारी ने इस क्षेत्र में कदम रखा और इससे पुरूषी अहं को बड़ा झटका लगा। धीरे—धीरे नारी लेखन ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान बनाई।पर पुरूषी लेखन का अनुकरण, उससे स्पर्धा और अपनी अलग पहचान बनाने की चाह में नारी लेखन जीवन की समग्रता, उसकी वैविध्यता से भटक रहा है। 'केवल महिला के लिए' वाले ठप्पे से उसे उभरना होगा। नहीं तो वह केवल आधा विमर्श होगा और समाज का पूरा प्रतिनिधित्व नहीं कर पाएगा। साथ ही आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की अपेक्षा हमारी संस्कृति के आधार पर उसका अनुसरण हुआ तो इससे हमारी संस्कृति और सभ्यता की जडे भी मजबूत होगी।

शोधालेख का उद्‌देश्य

वर्तमान का साहित्य लेखन स्त्री विमर्श, जाति विमर्श, आदिवासी विमर्श, पुरूष विमर्श जैसे अलग—अलग खानों में बँट गया है। इनके चलते लेखक की नजर और लेखनी भी सीमित घेरे में संचरण करती दिखाई देती है। पुरूष और स्त्री दोनों अपने—अपने नजरिए से सोचते, पढ़ते, लिखते हैं। इतना ही नही तो हर जाति, धर्म, पंथवादी, प्रांतवादी अपने जाति, धर्म, पंथ, प्रांत के चश्मे से देखता है,पढ़ता है, लिखता है। सभी अलग—अलग दायरों में अपने आपको रखकर विमर्श करते नजर आते हैं। अत: सवाल यह खड़ा होता है कि मनुष्य की नजर से कौन देखता है, सोचता है और कौन लिखता और पढ़ता है? मनुष्य के संदर्भ में विमर्श कौन करता है? वर्तमान के साहित्य लेखन के बहाने यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है। पुरूषों से प्रतिद्‌वंद्‌विता, होड में निर्माण हो रहा नारी लेखन विषय एवं वैविध्य की दृष्टि से कई सवाल खडे करता है।उनका विमर्श प्रस्तुत आलेख का प्रयोजन है।

शोधालेख की पद्‌धतियाँ

प्रस्तुत आलेख शोध की विवेचन—विश्लेषण, सोदाहरण स्पष्टीकरण, वर्गीकरण, समीक्षा आदि पद्‌धतियों पर आधारित है।

कुंजीशब्द — विमर्श, अस्मिता, बुनियाद, पूर्वाग्रह, पातिव्रत्य, दृष्टिगोचर, देहमुक्ति, अंधानुकरण, प्रतिद्‌वंद्‌विता, सरोकार, परिदृश्य।

प्रस्तावना

वर्तमान साहित्य–विवेचना, आलोचना, संगोष्ठी, चर्चासत्रों में स्त्री–विमर्श, दलित विमर्श, पुरूष विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि जैसे विमर्श हीअधिकतर चर्चा के केंद्र में होते हैं। इन विमर्शों की अलग–अलग व्याख्या समाज को जोड़ती कम तोडती अधिक नजर आती है। स्त्री और पुरूष की अलग–अलग अस्मिता ने वर्तमान में अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। हमारी संस्कृति, सभ्यता, नैतिकता को कठघरे में लाया है। वैसे प्रकृति ने स्त्री और पुरूष दोनों को एक–दूसरे का पूरक बनाया है। दोनों का अपना अलग अस्तित्व है, अस्मिता है, लेकिन दोनों अपने आप में पूर्ण नहीं है। अधूरे हैं। दोनों से ही समाज की बनावट, सजावट है। स्त्री और पुरूष दोनों पहले मनुष्य है। आज मनुष्य अपनी मनुष्यता खो रहा है। विमर्श तो असल में उसका होना चाहिए। स्त्री–पुरूष परिवार, समाज की इकाई है। इसमें किसी एक पर अन्याय, अत्याचार होता है तो पुरे परिवार को दंश भोगना पड़ता है, च्युँकि परिवार हमारी संस्कृति की नींव है, बुनियाद है। और आज यही परिवार खतरे में हैं। स्त्री और पुरूष की अलग अस्मिता, चाहत, व्यक्ति स्वतंत्रता ने इसकी जड़े हिला दी है।

आधुनिक युग में नारी हर क्षेत्र में पुरूषों से कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। और चलना भी चाहिए क्योंकि समाजरूपी रथ के ये दो पहिए जो हैं। दोनों का समाज में स्थान बराबरी का है और उसे सांवैधानिक मान्यता भी मिली है। पर सालों से अपने उपर हुए पुरूषों के अत्याचार को नारी भूली नहीं है। इसी पूर्वाग्रह से वर्तमान में उसकी मानसिकता बनती दिखाई देती है। आधुनिकता के नाम पर पाश्चिमात्य संस्कृति के अंधानुकरण ने उसकी पूर्वाग्रहरूपी आग में घी का काम किया है। इसी कारण नारी के आचार–विचार, चिंतन में 'स्व' की खोज प्रमुख बन रही है। इससे अनेक परंपराओं, मान्यताओं का खंडन हो रहा है। समय के साथ नारी की दशा और दिशा भले बदली हो पर देश–काल वातावरण के तर्ज पर आधुनिकता की आड में पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण कई सवाल खड़े करता है। सादगी को आभूषण और पवित्रता को शृँगार माननेवाली भारतीय नारी भोग–विलास को सुख की कुंजी नहीं मानती। उसका सतीत्व और पातिव्रत्य विश्व का अन्यतम आदर्श और भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है। मगर आधुनिकता के रंग में रंगी आज की भारतीय स्त्री अपनी सभ्यता ही नहीं पहचान भी खो रही है। ८५ साल पूर्व 'गोदान' में इसी समस्या को स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद ने लिखा था कि ''यह पुरूषों का षडयंत्र हैं, देवियों को ऊँचे शिखर से खिंचकर अपने बराबर बनाने के लिए, उन पुरूषों का जो कायर हैं, जो स्वच्छंद काम–क्रिडा की तरंगों में सांडों की भाँति दूसरों की हरीभरी खेती में मुँह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षडयंत्र सफल हो गया और देवियाँ तितलियाँ बन गई। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि इस त्याग और तपस्या की भूमि भारत में भी कुछ वही हवा चलने लगी है। विशेषकर हमारी शिक्षित बहनों पर वह जादू बडी तेजी से चढ रहा है। वह गृहिणी का आदर्श त्यागकर तितलियों का मार्ग पकड रही है।'' हमारी सभ्यता, संस्कृति अलग है। ऐसे में पश्चिमी अंधानुकरण से प्रगति को नापना कितना संयुक्तिक हैं?

पिछले कुछ दशकों में स्त्री–मुक्ति का विमर्श साहित्य के केंद्र में दिखाई देता है। मुक्ति के नाम पर सभी प्रकार के बंधनों से छुटकारा वह चाहती है।इतना ही नहीं पारिवारिक रिश्तों के बंधन भी उसे आज बेडियों की तरह लग रहे हैं। स्त्री अपने देह को सबसे वरीयता देकर उसकी मुक्ति के बारें में अधिक सजग दिखाई देती है। मगर क्या देहमुक्ति से स्त्री स्वतंत्र हो जाएगी? अपना अलग अस्तित्व निर्माण कर सकेगी? कर सकेगी भी तो क्या जीवन के चरम लक्ष्य 'सुख' को प्राप्त करेगी? महादेवी वर्मा नारी गुणों की श्रेष्ठता को अबाधित रखकर 'शँखला की कडियाँ' में स्वतंत्रता की बात इस प्रकार करती हैं कि ''स्त्री स्वतंत्रता का आधार स्त्रियोचित गुणों के आधार पर होना चाहिए। पुरूषों की बराबरी के नाम पर स्त्रियों को पुरूषों की अराजकतापूर्व त्रृटियों का अनुकरण नहीं करना चाहिए।''

पुरूष के अनुकरण में, उससे होड के प्रयास में स्त्रियाँ अपने स्त्रियोचित गुणों से हाथ धो बैठने का डर हैं। प्रकृति ने पुरूष और स्त्री को अलग–अलग बनाया है।दोनों का कार्यक्षेत्र एवं दायित्व भी अलग है। पर पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से उसके स्त्रियोचित गुणों को खोने का डर है। प्रेमचंद के शब्दों में कहें तो, ''बाज पक्षी की तरह हंस अगर चिडियों का शिकार करने की सोचेगा तो उसे मानसरोवर की शांति को छोड़कर तेज चोंच, तेज चंगुल, तेज पंख एवं उतनी ही तेज रक्त की प्यास को अपनाना पडेगा, पर इसके लिए उसे सदियाँ लग सकती हैं फिर भी वह बाज बनेगा या नहीं इसमें संदेह हैं, पर वह बाज बने या न बने पर वह हंस न रहेगा।''

वर्तमान नारी लेखन पर विधा एवं विविधा की दृष्टि से विचार आवश्यक हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर महिला लेखन की यात्रा कविताओं, कहानियों और उपन्यासों तक सीमित दिखाई देती है। साहित्य की अन्य विधाओं पर लेखन नहीं हुआ ऐसा नहीं, पर इसकी मात्रा बहुत कम दिखाई देगी। इसी प्रकार जीवन की समग्रता, उसकी वैविध्यता का चित्रण नारी लेखन में कम ही दृष्टिगोचर होता है। उसकी लेखनी स्त्री–पुरूष संबंध, वैवाहिक

तनाव, यौन संबंध, स्त्री–पुरूष समानता जैसे विषयों के चक्कर ही काटती दिखाई देती है। गहन जीवनानुभव के बावजूद विषयवस्तु की पुनरावृत्ति के दायरे से नारी लेखन को बाहर आना होगा और 'केवल महिला के लिए' वाले ठप्पे से बचना होगा। यदि वह केवल महिला जगत् तक सिमटकर रह गया तो वह आधा विमर्श होगा और समाज का पूरा प्रतिनिधित्व नहीं कर पाएगा।

नारी विमर्श का एक नारा यह भी है कि पुरूष लेखकों द्वारा नारी के अंतर्मन के उलझनों की सक्षमता से अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है। इसीलिए नारी को लिखना आवश्यक है। यह सही भी है। और इसी कारण स्त्री लेखन का स्वागत भी हुआ है। पर पुरूष के प्रति उसके पूर्वाग्रह पर भी विचार होना चाहिए। प्रतिशोध और प्रतिद्वंद्विता के हेतुपरक लिखे इस साहित्य से सामाजिक स्वास्थ्य को कितना लाभ मिल सकता है?कुछेक पुरूषों के गलत बर्ताव से समूची पुरूष जाति को अपना शत्रू मानना कहाँ तक उचित है?

देहमुक्ति, व्यक्ति स्वतंत्रता के नाम पर चलनेवाला नारी विमर्श ऐसे लगता है नारी आंदोलन को भटकाव की दिशा में ले जा रहा है। नारी देह के खुलेपन का जो व्यापार आज के दौर में मीडिया– टिव्ही, सिनेमा, इंटरनेट के माध्यम से हो रहा है उससे सामाजिक स्वास्थ्य बिघड रहा है। बाजारवाद स्त्री का इस्तेमाल कर रहा है। स्त्री उपभोग्य वस्तु के रूप में तब्दील हो रही है। आधुनिकीकरण की आड में उसके आचार–विचार, व्यवहार में हो रहे परिवर्तन से श्लील–अश्लील, नैतिक–अनैतिक में अंतर धूसर हो रहा है।

यथार्थ चित्रण के नाम पर भले आज साहित्य में स्त्री का 'मॉडर्न' चित्रण प्रस्तुत हो रहा हो, पर उसकी (ऐसे स्त्री जीवन की) यथार्थ में मात्रा बहुत कम दिखाई देती है। आज भी हमारी भारतीय स्त्री विधिवत विवाह और परिवार को ही महत्व देती दिखाई देगी। युरोपियन स्त्री की तरह कुमारी अवस्था में माता बनना, अनेक पुरूषों से संसर्ग में गौरव का अनुभव करना, पुरूष मित्र की अविवाहित पत्नी बनकर रहना और परिवार को छोडकर अकेले रहना भारतीय नारी के लिए न उतना सहज है, न स्वीकार्य होगा। और शायद ही उसे यह अच्छा लग सकता है।

नारी का अपनी अस्मिता, स्वत्व, स्वाभिमान के लिए संघर्ष एवं उस हेतु लेखन जायज है, पर अनुकरण से शुरू हुई उसकी यह यात्रा प्रतिशोध, प्रतिद्वंद्विता से होते हुए आज लगता है आत्मपरिक्षण तक आ पहुँची है, च्यूँकि इस लेखन में अपनी जमीन, अपने सरोकार और ओ बूँदे बहुत कम दिखाई देती हैं जिसकी सिंचाई से हमारी संस्कृति सुरक्षित बनी रहे। स्त्री–विमर्श के वर्तमान परिदृश्य में इन बिंदुओं पर आज न केवल विचार बल्कि चिंतन के साथ दृष्टिकोण के परिवर्तन की भी आवश्यकता है।

• आधार ग्रंथ

१. गोदान– प्रेमचंद
२. प्रेमचंद सृष्टि और दृष्टि– डॉ. चंदकांत बांदिवडेकर
३. शृँखला की कडियाँ– महादेवी वर्मा
४. मानव मूल्य और साहित्य– धर्मवीर भारती